पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त (PRINCIPLES OF CURRICULUM CONSTRUCTION)

किसी समाज के लिए शिक्षा के पाठ्यक्रम का निर्धारण करने में दार्शनिक विचारधारा, सामाजिक मूल्यो, विश्वासों एवं परम्पराओं, राजनीतिक विचारधारा, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों आदि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पाठ्यक्रम के निर्माण में इनके प्रभावों को सिद्धान्तों के रूप में बाँध दिया गया है। उदाहरणार्थ-दर्शनशास्त्र के प्रभाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रमुख सिद्धान्त यह है कि पाठ्यक्रम का निर्माण समाज के उद्देश्यों के अनुसार किया जाना चाहिए। समाजशास्त्र के प्रभाव से उत्पन्न सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम में मानव समाज के समस्त उपयोगी अनुभवों एवं क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए। मनोविज्ञान पाठ्यक्रम निर्माण में सबसे अधिक बल बालकों की रुचि, रुझान तथा योग्यता पर देता है। विज्ञान तथा वैज्ञानिक प्रवृत्ति को विकसित करने वाले विषयों एवं क्रियाओं का समावेश आज के पाठ्यक्रम की एक अनिवार्य आवश्यकता हो गई है क्योंकि के भौतिक जीवन के लिए क्या उपयोगी है तथा क्या नहीं तथा किसी वस्तु को मानव के लिए कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है. इन प्रश्नों का समाधान विज्ञान ही कर सकता है।

इस प्रकार पाठ्यक्रम निर्माण में दार्शनिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के महत्व के आधार पर निम्नलिखित सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाना चाहिए

1. **जीवन से सम्बन्धित होने का सिद्धान्त**।
2. **शैक्षिक उद्देश्यों से अनुरूपता का सिद्धान्त।**
3. **उपयोगिता का सिद्धान्त।**
4. **बाल केन्द्रियता का सिद्धान्त।**
5. **रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धान्त**।
6. **खेल एवं कार्य की क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध का सिद्धान्त।**

7. **संस्कृति एवं सभ्यता के ज्ञान का सिद्धान्त। 8. व्यक्तिगत भिन्नता एवं लचीलेपन का सिद्धान्त।**

9. अग्रदर्शिता का सिद्धान्त।

10. अनुभवों की पूर्णता का सिद्धान्त।

11. उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति का सिद्धान्त।

12. जीवन सम्बन्धी क्रियाओं एवं अनुभवों के समावेश का सिद्धान्त।

13. विकास की सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त

14. सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त।

15. अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धान्त।

16. जनतन्त्रीय भावना के विकास का सिद्धान्त।

17. सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त।

18, शिक्षा जीवन की अवस्थाओं का सिद्धान्त।

1. **जीवन से सम्बन्धित होने का सिद्धान्त** (Principle of Relationship with Life)-पाठ्यक्रम निर्माण का सर्वप्रमुख सिद्धान्त यह है कि पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयो, क्रियाओं एवं वस्तुओं को सम्मिलित किया जाये जिनका किसी न किसी रूप में बालकों के वर्तमान जीवन से सम्बन्ध हो तथा साथ ही वे उनके भावी जीवन के लिए उपयोगी भी हो। ऐसे विषयों का अध्ययन करके ही बालक जीवन में सफलता कर सकेंगे। परम्परागत संस्कृत पाठशालाओं एवं मकतयों का महत्व आज इसलिए कम हो गया है। क्योंकि उनमें पढ़ाये जाने वाले विषयों का जीवन से बहुत कम सम्बन्ध होता है।

2. **शैक्षिक उद्देश्यों से अनुरूपता का सिद्धान्त** (Principle of Conformity with the Aims of Education) - पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन है। अतः पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय शिक्षा के उद्देश्यों पर निरन्तर ध्यान रखना चाहिए। इसलिए पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं का समावेश करना चाहिए जो शिक्षा के उद्देश्यों के अनुकूल हो। वर्तमान समय में शिक्षा का उद्देश्य बालको का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं चारित्रिक विकास करने के साथ-साथ उन्हें किसी उद्योग अथवा उत्पादन कार्य में निपुण करना है अर्थात् उन्हें व्यक्तिगत एवं सामाजिक हितों के संरक्षण के योग्य बनाना है। पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय हमें इन उद्देश्यों को सामने रखना चाहिए। उदाहरणार्थ-शारीरिक विकास के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि शारीरिक विकास के लिए किन-किन विषयों का ज्ञान एवं किन क्रियाओं का अभ्यास लाभदायक हो सकता है। अतः इसके लिए शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान एवं गृह विज्ञान के सामान्य सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ खेलकूद एवं व्यायाम को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत बालकों को दैनिक जीवन में स्वास्थ्यप्रद नियमों जैसे प्रातःकाल में सोकर जल्दी उठना, नित्य स्नान करना, शरीर एवं उसके विभिन्न अंगों (आँख, कान, नाक, गला तथा दाँत आदि) की सफाई करना, व्यायाम करना, सुपाच्य एवं पौष्टिक भोजन करना, दिनचर्या नियमित रखना, समय से सोना आदि का पालन करने की आदत विकसित की जानी चाहिए। इसी प्रकार अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भी तद्नुकूल विषयों एवं क्रियाओं का पाठ्यक्रम में समावेश किया जाना चाहिए। इसके साथ ही विभिन्न स्तरों के लिए इन विषयों के ज्ञान के स्वरूप एवं सीमा का भी निर्धारण किया जाना चाहिए।

3. **उपयोगिता का सिद्धान्त** (Principle of Utility) यह सिद्धान्त जीवन से सम्बन्धित होने के सिद्धान्त के लगभग अनुरूप ही है। इसके अनुसार पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए जो बालकों के भावी जीवन में काम आ सकें। नन (Nunm) का मानना है कि मनुष्य अपने बच्चों को केवल ज्ञान के प्रदर्शन के लिए व्यर्थ की बातें सिखाना नहीं चाहता है, बल्कि वह चाहता है कि बालकों को ऐसी बातें सिखाई जायें जो जीवन के लिए उपयोगी हों। क्या उपयोगी है और क्या अनुपयोगी, यह समय विशेष की विचारधारा निश्चित करती है। उदाहरणार्थ-लोकतन्त्रीय देशों में प्रत्येक बालक को अपनी मातृभाषा एवं राष्ट्रभाषा का ज्ञान होना चाहिए तथा वह सामाजिक व्यवहार में निपुण होना चाहिए। अत: इसके लिए पाठ्यक्रम में मातृभाषा, राष्ट्रभाषा तथा सामाजिक विज्ञान एवं सामाजिक क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए। उपयोगिता की दृष्टि से ही विषयों के क्रम का निर्धारण किया जाना चाहिए अर्थात सर्वाधिक उपयोगी विषय को प्रथम स्थान पर रखना चाहिए।

4. **बाल केन्द्रियता का सिद्धान्त** (Principle of Child Centredness) मनोविज्ञान बाल-केन्द्रित शिक्षा पर सर्वाधिक बल देता है। अतः इसके अनुसार पाठ्यक्रम भी बाल केन्द्रित होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि पाठ्यक्रम बालकों की रुचियों, आवश्यकताओं. क्षमताओं, योग्यताओं एवं मनोवृत्तियों तथा बुद्धि एवं आयु के अनुकूल होना चाहिए। बच्चों को उनकी रुचि, रुझान एवं योग्यता के अनुसार कुछ वर्गों में रखा जा सकता है, जैसे- साहित्यिक प्रवृत्ति वाले छात्र, विज्ञान में रुचि रखने वाले छात्र, रचनात्मक कार्यों एवं हस्तकला में रुचि लेने वाले छात्र आदि। इनके लिए पाठ्यक्रम का नियोजन

वर्गों में किया जा सकता है किन्तु इन वर्गों में भी अनेक विषयों का समावेश होना चाहिए जिससे बालकों को अपनी रुचि के अनुसार विषय एवं क्रियाएँ चुनने का अवसर प्राप्त हो सके।

5. **रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धान्त** (Principle of Utilising Creative and Constructive Powers) बालकों में रचनात्मक प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। अतः पाठ्यक्रम में ऐसे अवसर प्रदान किये जाने चाहिए जिससे उनकी रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों का अधिक-से-अधिक उपयोग किया जा सके। इसके लिए बालकों को प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए तथा उचित निर्देशन प्रदान करना चाहिए। इस सिद्धान्त के महत्व के सम्बन्ध में रेमान्ट (Raymont) ने लिखा है- जो पाठ्यक्रम, वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त है, उसमें निश्चित रूप से रचनात्मक विषयों के प्रति निश्चित सुझाव होना चाहिए।

6. **खेल एवं कार्य की क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध का सिद्धान्त** (Principle of Inter-relation:of Play and Work Activities) बालक खेल की क्रियाओं में बहुत अधिक रुचि रखता है किन्तु कार्य के प्रति वैसी रुचि प्रदर्शित नहीं करता है। इसका कारण यह है कि खेल से उसे आनन्द की अनुभूति होती है। अत: पाठ्यक्रम निर्माण में इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि ज्ञान सम्बन्धी क्रियाओं से भी बालकों को खेल की क्रियाओं के समान ही आनन्द प्राप्त हो सके। इसका अर्थ यह नहीं है कि ज्ञान एवं खेल की क्रियाओं को एक जैसा समझा जाये, बल्कि इसका आशय यह है कि ज्ञान की क्रियाओं को रुचिकर बनाने के लिए उन्हें खेल की क्रियाओं से सम्बन्धित करने का प्रयास किया जाये। इस सम्बन्ध में क्रो एवं क्रो का कथन महत्वपूर्ण लगता है जो लोग सीखने की प्रक्रिया को निर्देशित करते हैं, उनका उद्देश्य यह होना चाहिए कि ज्ञानात्मक क्रियाओं की ऐसी योजना बनायें जिसमें खेल के दृष्टिकोण को स्थान प्राप्त हो

"The aim of those who guide the learning process should be so to plan learning activities that the play attitude is introduced." -Crow and Crow

7. संस्कृति एवं सभ्यता के ज्ञान का सिद्धान्त (Principle of the Knowledge of Culture (and Civilization)-पाठ्यक्रम के निर्माण के समय इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए इसमें उन विषयो, वस्तुओं एवं क्रियाओं को अवश्य सम्मिलित किया जाये जिससे बालकों को अपनी संस्कृति एवं सभ्यता

का ज्ञान प्राप्त हो सके। शिक्षा का एक उद्देश्य संस्कृति एवं सभ्यता का संरक्षण एवं विकास करना.है। अतः पाठ्यक्रम इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक होना चाहिए।

8. **व्यक्तिगत भिन्नता एवं लचीलेपन का सिद्धान्त** (Principle of Individual Difference and Flexibility)- मनोविज्ञान के विकास से पूर्व सभी के लिए एक जैसा पाठ्यक्रम उपयुक्त समझा जाता था परन्तु अब मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक बालक की रुचियाँ, आवश्यकताएँ, क्षमताएँ, योग्यताएँ, मनोवृत्तियाँ एवं बुद्धि एक-दूसरे से भिन्न होती है तथा उनका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व होता है। इसलिए सभी के लिए एक समान पाठ्यक्रम की अवधारणा उपयुक्त नहीं है। अतः पाठ्यक्रम में विविधता एवं लचीलापन का होना अति आवश्यक है। इससे पाठ्यक्रम में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। इसके लिए शिक्षक एवं शिक्षण संस्थाओं को यह अधिकार होना चाहिए कि ये पाठ्यक्रम में आवश्यकता के अनुरूप संशोधन एवं सुधार कर सके। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने भी इस सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त किया है।

आयोग के अनुसार, व्यक्तिगत भिन्नताओं की दृष्टि से तथा व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं रुचियों के अनुकूलन के लिए पाठ्यक्रम में पर्याप्त विविधता एवं लचीलापन होना चाहिए।" "There should be enough of variety and elasticity in the curriculum to allow for individual differences and adaptation to individual needs and interests."

-Secondary Education Commission Report

अग्रदर्शिता का सिद्धान्त (Principle of Forward Looking) पाठ्यक्रम निर्माण के प्रथम सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं को समाविष्ट करना चाहिए जो बालक के जीवन से सम्बन्धित हो, किन्तु सफल जीवन यापन के लिए वर्तमान के साथ-साथ भावी जीवन में अनुकूलीकरण की दृष्टि से पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों, वस्तुओं एवं क्रियाओं को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए जो बालकों के जीवन में आने वाली समस्याओं एवं परिस्थितियों को समझने उनका समाधान करने में सहायक सिद्ध हो सके। इस सम्बन्ध में रायबर्न (Ryburn) का कथन इस प्रकार है- बालक जो कुछ विद्यालय से सीखता है, उसके द्वारा उसमें ऐसी योग्यता आनी चाहिए कि वह जीवन की परिस्थितियों से अनुकूलन कर सके तथा आवश्यकता पड़ने पर परिस्थितियों में परिवर्तन ला सके।

10. **अनुभवों की पूर्णता का सिद्धान्त** (Principle of the Totality of Experiences) पाठ्यक्रम के अन्तर्गत मानव जाति के अनुभवों की पूर्णता निहित होनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि पाठ्यक्रम में परम्परागत ढंग से पढ़ाये जाने वाले सैद्धान्तिक विषयों के साथ-साथ उन सभी अनुभवों को भी स्थान दिया जाना चाहिए जिनको बालक विभिन्न क्रियाओं द्वारा प्राप्त करता है। ये क्रियाएँ विद्यालय, खेल के मैदान, कक्षा कक्ष, प्रयोगशाला, पुस्तकालय तथा छात्रों एवं शिक्षकों के अनौपचारिक सम्पर्कों में निरन्तर गतिशील रहती है। इस दृष्टि से विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम है। माध्यमिक शिक्षा आयोग

का मी यही विचार है। माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, 'पाठ्यक्रम का अर्थ केवल सैद्धान्तिक विषयों से नहीं है, बल्कि इसमें अनुभवों की सम्पूर्णता निहित होती है।

"Curriculum does not mean only the academic subjects but it includes the totality of experiences. -

Secondary Education Commission Report

11. **उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति का सिद्धान्त** (Principle of Achievement of Wholesome Behaviour Pattern)- बालक के समाजीकरण तथा सफल एवं व्यवहार कुशल भावी जीवन के लिए उसमे उत्तम आचरण का विकास करना आवश्यक होता है। अतः पाठ्यक्रम में उन विषयों, वस्तुओं एवं क्रियाओं का समावेश किया जाना चाहिए, जिससे बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शों की शिक्षा मिल सके तथा उनका अनुसरण करके उनमें समाज-हित देश-हित तथा परोपकार की भावना का विकास हो सके। इस सम्बन्ध में क्रो एवं क्रो का कथन है-'पाठयक्रम का निर्माण इस प्रकार से किया जाना चाहिए, जिससे वह बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति में सहायता कर सके।

"The Curriculum should be so framed that it may help the children in the achievement of wholesome behaviour patterns, -Crow and Crow

12. **जीवन सम्बन्धी क्रियाओं एवं अनुभवों के समावेश का सिद्धान्त** (Principle of Inclusion of Life Activities and Experiences) - शिक्षा का उद्देश्य जीवन को पूर्णता प्रदान करना है। अतः पाठ्यक्रम में जीवन से सम्बन्धित उन सभी क्रियाओं एवं अनुभवों को स्थान दिया जाना चाहिए जिससे बालक का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित हो सके। इसके लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय ऐसे प्रयत्न किये जाने चाहिए कि उसमें वे सभी क्रियाएँ समाहित हो जाये जिनसे बालको का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक विकास सम्भव हो सके। चूंकि हमने लोकतान्त्रिक व्यवस्था को स्वीकार किया है, अतः पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे प्रारम्भ से ही बालक अपने जीवन में लोकतान्त्रिक पद्धति को ग्रहण एवं धारण कर सके। इसके लिए पाठ्यक्रम मे ऐसी क्रियाओं एवं अनुभवों को स्थान दिया जाना चाहिए जो लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण को अधिक से अधिक विकसित कर सके।

13. **विकास की सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त** (Principle of Continual Process of Evolution) किसी भी देश की शिक्षा पर उसके दर्शन, समाज, राजनीतिक स्थिति, वैज्ञानिक एवं

प्रौद्योगिक प्रगति आदि का प्रभाव पड़ता रहता है। अतः किसी भी पाठ्यक्रम को स्थायी रूप से सदैव के लिए निर्मित नहीं किया जा सकता है। समय एवं परिस्थितिजन्य आवश्यकताओं के अनुसार उसमे

परिवर्तन करना आवश्यक होता है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में विकास की सतत् प्रक्रिया का ध्यान रखना अनिवार्य होता है।

14. **सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त** (Principle of Relationship with Community Life) पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय स्थानीय आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उन सभी सामाजिक प्रथाओं मान्यताओं विश्वासो मूल्यों एवं समस्याओं को स्थान । दिया जाना चाहिए, जिनसे बालक सामुदायिक जीवन की प्रमुख बालों से परिचित हो सके। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने भी इस सिद्धान्त पर बल देते हुए कहा है

“पाठ्यक्रम सामुदायिक जीवन से सजीव एवं अनिवार्य अंग के रूप में सम्बन्धित होना चाहिए।
"Curriculum must be vitally and organically related to community life."

-**Secondary Education Commission Report**

15. **अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धान्त** (Principle of Training for Leisure) वर्तमान समय में अवकाश के सदुपयोग की भी समस्या है। यदि अवकाश के उपयोग का बालक को सही प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है तब उसके गलत दिशा में जाने की सम्भावना अधिक रहती है। अत पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जो बालकों को कार्य एवं अवकाश दोनों के लिए प्रशिक्षित कर सके। माध्यमिक शिक्षा आयोग में भी इस सम्बन्ध में अपने प्रतिवेदन में कहा है पाठ्यक्रम इस प्रकार नियोजित किया जाना चाहिए कि वह छात्रों को न केवल कार्य के लिए अपितु अवकाश के लिए भी प्रशिक्षित करे

इसलिए पाठ्यक्रम में अध्ययन के विषयों के साथ-साथ खेलकूद, सामुदायिक कार्य, सामाजिक कियाओं तथा अन्य उपयोगी कियाओं को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

16. **जनतन्त्रीय भावना के विकास का सिद्धान्त** (Principle of Developing Democratic Spirit) वर्तमान भारत ने लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था को स्वीकार किया है लोकतन्त्रीय व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण हेतु नागरिकों में जनतन्त्रीय भावना का अधिकाधिक विकास होना चाहिए। अतः शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य बालको में जनतन्त्रीय भावना का विकास करना है। इसलिए पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो जनतन्त्र की भावना एवं आदर्शों का पोषक हो इसके लिए विद्यालय के सभी कार्यों प्रवेश. चयन, अध्ययन अध्यापन, खेलकूद मूल्यांकन आदि में जनतन्त्रीय भावना का समावेश होना चाहिए।

17. **सह सम्बन्ध का सिद्धान्त** (Principle of Correlation) पाठ्यक्रम के निर्धारण में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसमें सम्मिलित किये जाने वाले विभिन्न विषय एक दूसरे से सम्बन्धित हो इसका तात्पर्य यह है कि एक विषय की शिक्षा दूसरे विषय की शिक्षा का आधार बन सके। वर्तमान समय में सभी शिक्षा शास्त्री इस सिद्धान्त पर विशेष बल दे रहे है तथा इसी के आधार पर एकीकृत एवं सुसम्बद्ध पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है। विषयों से सम्बन्धित न होने पर पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता समाप्त हो जाती है। अतः पाठ्यक्रम के निर्माण में सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है।

18. **शिक्षा जीवन की अवस्थाओं का सिद्धान्त** (Principle of Stages of Education life) ए. एन. व्हाइटहेड (A. N. Whitehead) के अनुसार, पाठ्यक्रम शिक्षा जीवन की तीन अवस्थाओं कौतूहल, यथार्थता तथा सामान्यीकरण के अनुरूप होनी चाहिए। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो बालकों को यथार्थ ज्ञान दे सके तथा जिससे वे वास्तविक जीवन में सफल हो सके। उपर्युक्त सिद्धान्तों का निष्कर्ष यह है कि पाठ्यक्रम का निर्माण बालकों की आवश्यकताओं, रुचियों, योग्यताओं, विशिष्टताओं एवं विभिन्नताओं को दृष्टि में रखते हुए किया जाना चाहिए जिससे

अनेक व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हो सके तथा भावी जीवन में वे सफल जीवन-यापन के योग्य बन सके। इस दृष्टि से विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम है। माध्यमिक शिक्षा आयोग का यह कथन इसकी पुष्टि करता है- विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन पाठ्यक्रम बन जाता है जो छात्रों के लिए जीवन के सभी पहलुओं से जुड़ा होता है तथा सन्तुलित व्यक्तित्व के विकास में सहायता प्रदान करता है।

"The whole life of the school becomes the curriculum, which can touch the life of the students at all points and help in the evolution of a balanced personality." -**Secondary Education Commission Report**